सर्वार्थसिद्धि : समालोचनात्मक अनुशीलन

डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री, नीमच

जैन साहित्यमें मूल रूपसे मोक्ष-मार्गको प्रकाशित करने वाले अनेक सत् शास्त्रोंकी रचना विगत दो सहस्र वर्षोंके अन्तरालमें अनवच्छिन्न रूपमें होती रही है। प्राकृत भाषामें रचे गये ग्रन्थोंमें षट्खण्डागम, समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय मुख्य हैं। सभी आचार्योंने आत्माको केन्द्रमें रखकर सच्चे सुख या मोक्षकी प्राप्तिके लिए अलग-अलग शैलीमें मोक्ष-मार्गका निरूपण किया। संस्कृतमें रचे गये ग्रन्थोंमें आचार्य उमास्वामी कृत "तत्त्वार्थसूत्र" या मोक्षशास्त्र प्रमुख है। इस सूत्र ग्रन्थोंकी रचना विक्रमकी दूसरी शतीमें हुई थी। इसके आधार पर ही आचार्य अमृतचन्द्र कृत "तत्त्वार्थसार", श्रुतमुनि कृत "परमागमसार" तथा भ० सकलकीर्ति विरचित "तत्त्वार्थसारदीपक" आदि रचनाओंका निर्माण हुआ। "तत्त्वार्थसूत्र" पर सबसे अधिक टीकाएँ लिखी गई। सबसे बड़ी टीका "गन्धहस्तिमहाभाष्य" चौरासी हजार श्लोकप्रमाण आचार्य समन्तभद्र स्वामीने रची थी जो आज अनुपलब्ध है। आचार्य पूज्यपादस्वामी कृत "सर्वार्थसिद्धि" चार हजार श्लोकप्रमाण है। आचार्य अकलंकदेव विरचित "राजवार्तिक" सोलह हजार श्लोकप्रमाण टीका कही गई है। उपलब्ध टीकाओंमें सबसे बड़ी बीस हजार श्लोकप्रमाण "श्लोकवार्तिक" भाष्य है, जिसके रचयिता आचार्य विद्यानन्द स्वामी हैं। इनके अतिरिक्त ब्रह्म श्रुतसागर कृत "तत्त्वार्थवृत्ति", पं० वामदेव कृत "तत्त्वार्थसार", भास्करनन्दि विरचित "तत्त्वार्थसूत्रवृत्ति" तथा आचार्य प्रभाचन्द्र कृत "तत्त्वार्थवृत्ति पदविवरण इत्यादि रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। बृहत्प्रभाचन्द्र कृत "तत्त्वार्थसूत्र" आचार्य उमास्वामीकी छाया ही प्रतीत होती है। इतना अवश्य है कि कुल १०७ सूत्रोंमें दसों अध्यायोंका सप्रमाण निरूपण किया गया है। प्रत्येक अध्यायमें सूत्रोंकी संख्या घटा दी गई और कहीं-कहीं स्पष्टीकरण तथा संक्षिप्तीकरणकी प्रवृत्ति लक्षित होती है।

"तत्त्वार्थसूत्र" जैनधर्मकी बाइबिल कही जाती है। यद्यपि इसमें अध्यात्म और आगम जैसा कोई विभाग नहीं है, किन्तु जो भी वर्णन किया गया है उसमें आत्माको मूल बिन्दु माना गया है। आत्माकी शुद्धता और अशुद्धता भावोंसे है। जैनधर्ममें भावकी प्रधानता है। इसका ही विस्तृत वर्णन टीका ग्रन्थोंमें पाया जाता है। आचार्य प्रभाचन्द्र कृत "तत्त्वार्थवृत्तिपदविवरण" सर्वार्थसिद्धिकी विस्तृत व्याख्या है। इससे आचार्य पूज्यपाद कृत "सर्वार्थसिद्धि" टीकाका विशेष महत्व द्योतित होता है। यह टीका प्राचीन होने पर भी कई विशेषताओं से युक्त है। टीका संक्षिप्त होनेपर भी सूत्रके प्रत्येक पदकी सटीक व्याख्या प्रस्तुत करने वाली है। इसमें न तो अति विस्तार है और न अति संक्षेप। दूसरी विशेषता यह है कि सम्पूर्ण टीका आगमके प्रमाणोंसे संवलित है। कहीं-कहीं यथावश्यक उद्धरण भी उद्धृत हैं। तीसरे, सूत्रके पूर्वापर सम्बन्ध, अत्यावश्यक प्रश्नोंका निर्देश तथा संक्षिप्त समाधान, न्याय हेतु आदिका सर्वत्र परिपालन लक्षित होता है।

टीकाका मुख्य स्रोत-ग्रन्थ है—षट्खण्डागम। षट्खण्डागम और कषायप्राभृत दिगम्बर जैन आम्नायके मूल ग्रन्थ माने जाते हैं। "षट्खण्डागम" का रचना-काल ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दी माना जाता है। वस्तुतः षट्खण्डागमकी रचना किसीने नहीं की, किन्तु संकलन किया गया। डॉ० ज्योतिप्रसाद जैनने आचार्य भूतबलिका समय ई० सन् ६६-९० माना है और षट्खण्डागमके संकलनका समय सन् ७५ निश्चित किया है। "सर्वार्थसिद्धि" की प्रस्तावनामें पण्डितजीने लिखा है—इन्द्रनन्दिने अपने श्रुतावतारमें षट्खण्डागम पर आ० कुन्दकुन्द की टीकाका भी उल्लेख किया है। इस आधारसे षट्खण्डागमका रचनाकाल प्रथम शताब्दीसे भी पूर्व ठहरता है।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वास्तवमें पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्रीने "सर्वार्थसिद्धि" की टीका लिखकर भावी पीढ़ियोंके लिए दिगम्बर जैन सिद्धांत-परम्पराका सच्चा मार्ग दर्शाया है। पण्डितजीने केवल टीकाके लिए टीका नहीं लिखी है, वरन् सम्पादनके मूल उद्देश्यका पालन पूर्ण रूपसे किया है। सम्पादनका उद्देश्य है—मूल रूपमें लेखककी कृति की पुनर्रचनाको मूलतः ज्योंका त्यों प्रस्तुत करना। ऐसी स्थितिमें यथार्थ सम्पादक प्रतिलिपि करते समय अपने मानसको मूल कृतिके साथ इस तरह संयोजित करता है कि उनके साथ पूर्ण तादात्म्य स्थापित हो जाता है। फिर, सम्पादकके मनमें केवल यही भाव बार-बार उदित होता है कि यदि मैं इस रचनाको लिखता, तो यहाँ पर क्या पाठ होता। अनन्तर अपने पाठकी प्रामाणिकताको साम्य प्रदर्शित करनेवाले अन्य पाठोंसे यथा हस्त-लिखित प्रतियोंसे तुलना कर मूल रूपमें स्थापित करता है।

पण्डितजीने "सर्वार्थसिद्धि" की प्रस्तावनाके पूर्व "दो शब्द" में पाठ-भेदकी समस्याको सामने रखकर सैद्धान्तिक विवेचनके द्वारा समाधान खोजा है जो सम्पादकीय दृष्टिसे ऐसी रचनाओंके सम्पादन करते समय ध्यानमें रहना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। इससे केवल पाठ-भेदकी समस्या ही नहीं सुलझती है, वरन् ग्रंथके मूल स्रोतका भी स्पष्ट पता लग जाता है। "तत्त्वार्थसूत्र" के ऐसे कई सूत्र हैं जिनकी प्ररूपणा तथा व्याख्या "षट्खण्डागम" के आधारसे की गई है। आचार्य पूज्यपादने अपने टीका ग्रन्थ "सर्वार्थसिद्धि" में "तत्त्वार्थ-सूत्र" के प्रथम अध्यायके "निर्देशस्वामित्व०" और "सत्संख्याक्षेत्र०" इस दो सूत्रोंकी व्याख्या "षट्खण्डागम" के आधारसे ही की है। इतना ही नहीं, "तत्त्वार्थसूत्र" का पूरा पाँचवाँ अध्याय "पंचास्तिकाय", "प्रवचन-सार" आदि ग्रन्थों पर आधारित है। इसकी व्याख्यामें आचार्य कुन्दकुन्दकी अनेक रचनाओंके उद्धरण मिलते हैं। "तत्त्वार्थसूत्र" के सूत्रों पर "मूलाचार" तथा आ० समन्तभद्रके "रत्नकरण्डश्रावकाचार" का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। पं० जुगलकिशोर मुख्तारने "सर्वार्थसिद्धि पर समन्तभद्रका प्रभाव" शीर्षक लेखमें तुलना कर यह सिद्ध किया है कि आचार्य समन्तभद्रकी सभी रचनाओंका "सर्वार्थसिद्धि" की व्याख्यामें उपयोग किया गया है। वास्तवमें आचार्य पूज्यपाद ऐसे सारस्वाचार्य हुए जिन्होंने सम्पूर्ण जिनागमका आधार लेकर टीका ग्रन्थकी रचना की।

"तत्त्वार्थसूत्र" एक ऐसा ग्रन्थ है जो दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही परम्पराओंमें आगमकी भाँति मान्य है। इसकी रचना सूत्र-शैलीमें होनेके कारण तथा विवेचन "तत्त्वार्थ" विषय पर होनेसे इसकी "तत्त्वार्थ-सूत्र" संज्ञा सार्थक है। किन्तु श्वेताम्बर-परम्पराके अनुसार वाचक उमास्वातिने सातवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें या आठवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धमें "तत्त्वार्थाधिगम" नामक लघु ग्रन्थकी रचना की थी जो कालान्तरमें "तत्त्वार्था-धिगमभाष्य" नामसे प्रसिद्ध हुआ। फिर, तत्त्वार्थाधिगम सूत्र नाम प्रचलित हो गया। मूल तत्त्वार्थसूत्रमें दस अध्याय हैं और तीन सौ सत्तावन सूत्र हैं। "सर्वार्थसिद्धि" की प्रस्तावनामें पण्डितजीने इस पर अच्छा विवेचन किया है। जो भी "तत्त्वार्थसूत्र" का मूल पाठी है, वह निष्पक्ष दृष्टिसे यह विचार कर सकता है कि श्वेताम्बर-परम्परा कुल ३४४ सूत्रोंको ही मूल रूपमें मानती है, तो यह मूल सूत्रोंमें कुछ परिवर्तन कर अपनी मान्यताके अनुसार स्वीकार करती है। विद्वानोंने इस सम्बन्धमें बहुत ऊहापोह किया और इस पर प्रकाश भी डाला। किन्तु पण्डितजीने दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही परम्पराओंको मूल रूपमें सामने रखकर यथार्थतः मूलका अनुसन्धान किया है। वे लिखते हैं—"वाचनके समय मेरे ध्यानमें यह आया कि सर्वार्थसिद्धिमें ऐसे कई स्थल हैं जिन्हें उसका मूल भाग माननेमें सन्देह होता है। किन्तु जब कोई वाक्य, वाक्यांश, पद या पदांश लिपिकार की असावधानी या अन्य कारणसे किसी ग्रन्थका मूल भाग बन जाता है, तब फिर उसे बिना आधारके पृथक् करनेमें काफी अड़चनका सामना पड़ता है।" वास्तवमें प्राचीन रचनाओंके सम्पादनकी यह मूल तथा अन्तरंग समस्या है। इस समस्याको जो सम्पादक पूरी ईमानदारीके साथ निभाता है, वही सम्पादनमें सफल होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पण्डितजीकी यह समस्या मौलिक है कि आचार्य पूज्यपादने जब "तत्त्वार्थसूत्र" के प्रथम अध्यायके "निर्देशस्वामित्व०" सूत्रकी व्याख्या "षट्खण्डागम" के आधारसे की है तो फिर कहीं कोई पंक्तिमें अन्तर क्यों है ? कहीं व्याख्याकारकी शिथिलता या असावधानीसे तो ऐसा नहीं हुआ ? कोई भी कारण हो सकता है। लेकिन यह चिह्न भी स्पष्ट है कि आचार्य पूज्यपादने चारों गतियोंके आश्रयसे सम्यग्दर्शनके स्वामीका निर्देश किया है। तब फिर, पूर्व मुद्रित प्रतियोंमें ऐसा लिखा हुआ वाक्य क्यों मिलता है कि तिर्यंचिनियोंमें क्षायिक सम्यग्दर्शनका अभाव है। यह स्पष्ट है कि दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओंके आगम ग्रन्थोंमें यह उल्लेख मिलता है कि सम्यग्दृष्टि मरकर किसी भी गतिके स्त्रीवेदियोंमें उत्पन्न नहीं होता। तब फिर, मल्लिको तीर्थंकर मानने और उनके पूर्वके महाबलके भवमें मायाचार करनेके कारण स्त्री नाम कर्मका बन्ध कर तीर्थंकरकी पर्यायमें स्त्री होनेके औचित्यको कैसे सिद्ध किया जाये ? यह प्रश्न अवश्य श्वेताम्बर आगम ग्रन्थोंकी टीका लिखने वालोंके समक्ष रहा होगा। यद्यपि उन्होंने विचारकर यह स्पष्टीकरण किया भी है कि—"सम्यग्दृष्टि मरकर स्त्री नहीं होता, यह बाहुल्यकी अपेक्षा कथन है।" परन्तु इस प्रकारके कथनसे वास्तविकताका पता लगाने वालेका समाधान नहीं हो सकता। इसी प्रकारसे मुद्रित प्रतियोंमें विसंगत तथा भ्रमोत्पादक वाक्योंको भी सिद्धान्तका ज्ञाता बिना छान-बीन किये कैसे स्वीकार कर सकता है। अतः पण्डितजीने जब मुद्रित "सर्वार्थसिद्धि" में तिर्यंचनियोंमें क्षायिक सम्यग्दर्शनका हेतु "द्रव्यवेदस्त्रीणां तासां क्षायिकासम्भवात्" यह वाक्य पढ़ा, तो असमंजसमें पड़ गये। क्योंकि यह वाक्य आगमके अनुकूल नहीं है। पण्डितजी के ही शब्दों में—

"हमारे सामने यह प्रश्न था। हम बहुत कालसे इस विचारमें थे कि यह वाक्य ग्रन्थका मूल भाग है या कालान्तरमें उसका अंग बना है। तात्त्विक विचारणाके बाद भी इसके निर्णयका मुख्य आधार हस्तलिखित प्राचीन प्रतियाँ ही थीं। तदनुसार हमने उत्तर भारत और दक्षिण भारतकी प्रतियोंका संकलन कर शंका-स्थलों का मुद्रित प्रतियोंसे मिलान करना प्रारम्भ किया। परिणामस्वरूप हमारी धारणा सही निकली। यद्यपि सब प्रतियोंमें इस वाक्यका अभाव नहीं है, पर उनमेंसे कुछ प्राचीन प्रतियाँ ऐसी भी हैं जिनमें यह वाक्य उपलब्ध नहीं होता है।"

अपने अनुवादके सम्बन्धमें भी पण्डितजीने अप्रत्यक्ष रूपसे संकेत किया है। उनके ही शब्दोंमें—"इसी सूत्रकी व्याख्यामें दूसरा वाक्य "क्षायिकं पुनर्भाववेदेनैव" मुद्रित हुआ है। यहाँ मनुष्यिनियोंके प्रकरणसे यह वाक्य आता है। बतलाया यह गया है कि पर्याप्त मनुष्यिनियोंके ही तीनों सम्यग्दर्शनोंकी प्राप्ति सम्भव है, अपर्याप्त मनुष्यिनियों के नहीं। निश्चयतः मनुष्यनीके क्षायिक सम्यग्दर्शन भाववेदकी मुख्यतासे ही कहा है, यह द्योतित करनेके लिए इस वाक्यकी सृष्टि की गई है।"

भारतीय ज्ञानपीठसे प्रकाशित "सर्वार्थसिद्धि" के इस संस्करणकी कई विशेषताएँ हैं। प्रथम आचार्य पूज्यपादने अपनी व्याख्यामें जिन आगमिक ग्रन्थोंके उद्धरण दिये हैं उनका नाम-निर्देश नहीं किया। पण्डितजीने टिप्पणमें अनेक स्थानोंपर मूलाचार, गोम्मटसार जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड आदिका उल्लेख किया है। जहाँ वृत्तिमें पाठ-भेदका निर्देश किया गया है, वहाँ भी उसके मूल-स्रोतका या किसी नामका उल्लेख नहीं है। पण्डितजीने टिप्पणमें मूल पाठके साथ ग्रन्थका नामोल्लेख कर इस कमीको पूरा कर दिया है। प्रस्तुत संस्करण पाँच हस्तलिखित प्रतियोंके आधारपर सम्पादित तथा संशोधित किया गया है। इनके सिवाय दो मुद्रित संस्करणोंके आधारपर भी सम्पादन कर पाठ-भेद निश्चित किये गये हैं। अपने प्रारम्भिक "दो शब्द" में पृ० ५, ६-७ पर प्रथम अध्यायके तुलनात्मक पाठ दिये गये हैं जिनको देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि मुद्रित ग्रन्थोंमें पाठोंमें कितनी अशुद्धियाँ हैं। पण्डितजीके ही शब्द उनके सम्पादन-कार्यके प्रति कितने सटीक हैं। वे लिखते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"हम यह तो नहीं कह सकते कि सर्वार्थसिद्धिका प्रस्तुत संस्करण सब दृष्टियोंसे अन्तिम है, फिर भी इसे सम्पादित करते समय इस बातका ध्यान अवश्य रखा गया है कि जहाँ तक बने इसे अधिक परिशुद्ध और मूलग्राही बनाया जाय।"

इस सम्बन्धमें इतना कहना ही पर्याप्त है कि पण्डितजीने यह कार्य अत्यन्त सफलताके साथ निष्पन्न किया है। उनकी तरफसे कोई कमी नहीं दिखती है।

इस संस्करणकी यह भी विशेषता है कि इसमें प्रत्येक शब्द, पद, वाक्यका पूर्ण रूपसे सरल हिन्दीमें अनुवाद किया गया है। प्रत्येक पृष्ठपर नीचेमें पाठ-भेदका निर्देश किया गया है। अनुवादकी विशेषता यह है कि यदि मूलका वाचन न कर केवल अनुवाद ही पढ़ा जाये, तो ऐसा नहीं लगता कि हम किसीका अनुवाद पढ़ रहे हैं।

ग्रन्थके अन्तमें परिशिष्ट १ में प्रत्येक अध्यायमें समाविष्ट सूत्र तथा उनके मुद्रित पृष्ठकी संख्याका निर्देश किया गया है। इससे सूत्रका पता लगानेमें, ढूंढ़नेमें बहुत सुविधा जान पड़ती है। "उद्धृत वाक्य-सूची" के अन्तर्गत सर्वार्थसिद्धिमें हस्तलिखित प्रतियोंके आधारसे जो गाथा, श्लोक या वाक्य उद्धृत मिलते हैं, वे जिन ग्रन्थोंके हैं उनकी सूची दी गई है। अन्तमें "शब्दानुक्रमणिका" संलग्न है जो प्रत्येक शब्द तथा अंगभूत विषय की जानकारी एवं शोध-कार्यके लिए विषय-सामग्रीका संकलन करनेके लिए विशेष रूपसे उपयोगी है।

इस प्रकार प्रथम आवृत्तिके रूपमें मई, १९५५ में प्रकाशित "सर्वार्थसिद्धि" का यह संस्करण बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। सम्प्रति मुद्रण सम्बन्धी परिशुद्धता तथा अनुवाद विषयक विशुद्धताके साथ इसका द्वितीय संस्करण भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्लीकी मुद्रण-प्रक्रियासे निर्गमित हो शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। ऐसे सुन्दर प्रकाशनके लिए ज्ञानपीठ भी निःसन्देह गौरवान्वित हुआ है।

●

अमृतकलशके टीकाकार

पं० जगन्मोहनलाल शास्त्री, कटनी

आचार्य कुन्दकुन्दका "समयसार" अध्यात्म विषयका एकमात्र श्रेष्ठ ग्रन्थ है। यद्यपि और भी अनेक ग्रन्थ बादमें रचे गए हैं, पर उन सब पर "समयसार" की ही छाप है। यह ग्रन्थ उस महापुरुषकी सम्पूर्ण जीवनकी अनुभूतिका निचोड़ है।

भगवान् महावीरके बाद श्रुतकी परम्परा मौखिक रूपमें चलती रही। जब श्रुतका बहुत-सा अंश परम्परागत आचार्योंको विस्मृत हो गया, तब श्री १०८ आचार्य धरसेनने उसे लिपिबद्ध करनेके लिए अपना ज्ञान भूतबलि-पुष्पदन्त दो मुनियोंको दिया, जिन्होंने षट्खण्डागम सूत्रोंकी रचना की। यह लिपि रूपमें आगमकी सर्वप्रथम रचना की। इसका विषय करणानुयोग है; द्रव्यानुयोगका भी वर्णन यथास्थान है जिसके अन्तर्गत अध्यात्मके भी कहीं-कहीं दर्शन होते हैं, पर कुन्दकुन्दाचार्य तो भिन्न प्रकारकी धाराका प्रवाह बहा गए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org